International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 27-04-2025, Accepted: 28-05-2025, Published: 12-06-2025
Volume 11, Issue 2, 2025, Page No. 56-58

# कथाकार अमृतलाल नागर: फिल्मोद्योग के सात साल

**अनिल डबराल[1], डॉ. प्रकाश चंद[2]**
[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, द्वाराहाट, उत्तराखंड, भारत
[2] असि. प्रो., हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किच्छा, उत्तराखंड, भारत

**सारांश**
कथाकार अमृतलाल नागर हिंदी साहित्य के बड़े गद्यशिल्पी हैं। हिंदी साहित्य में उनकी पहचान उपन्यासकार के रूप में जानी जाती है। परन्तु उन्होंने केवल उपन्यास लेखन ही नहीं किया अपितु हिंदी के अन्य गद्य विधाओं में भी उन्होंने लेखन किया। इसके अलावा वे सन् 1940 से लेकर 1947 तक मुंबई के फिल्मोद्योग से जुड़े रहे। वहां पर उन्होंने संवाद लेखन, पटकथा लेखन, के साथ कई फिल्मों की हिंदी भाषा में डबिंग भी की। मुंबई फिल्मोद्योग में काम करने पर उन्हें आर्थिक संबल तो अच्छा मिला लेकिन उन्हें वह आत्मिक संतुष्टि प्राप्त नहीं हुई जो उन्हें लेखन से प्राप्त होती थी। इसलिए वे वहाँ से ऊबकर जल्द ही वापस आये और पूर्णत: लेखन को समर्पित हो गये।

**मूल शब्दः** अमृतलाल नागर, फिल्मोद्योग, लेखन, उपन्यासकार, हिंदी साहित्य

कथाकार अमृतलाल नागर ने साहित्य–सृजन के साथ साथ फिल्म उद्योग में भी अपनी सृजनशीलता से सशक्त उपस्थिति दर्ज की। वे 5 मार्च 1940 से अक्टूबर 1947 तक मुंबई और चेन्नई के फिल्मोद्योग से जुड़े रहे। उन्होंने न केवल पटकथा लेखन किया बल्कि कई विदेशी भाषाओं की फिल्मों की डबिंग के साथ–साथ संवाद भी लिखे परन्तु फिल्मोद्योग में उन्हें वह लेखक वाली आत्मतुष्टि कभी नहीं मिली। हालाँकि फिल्म–लेखन के साथ साथ उनका साहित्य सृजन भी सामानांतर रूप से चल रहा था। अपनी आत्मकथा में इस असंतुष्टि का जिक्र करते हुए वे लिखते हैं कि– "मेरी एक तम्मना जरूर है की एक दिन अपनी किताबों की रॉयल्टी पर निर्वाह करने लायक बन जाऊं जी चाहने पर किताब खरीद सकूं, घूम सकूँ, अपनी फ़िल्मी कमाई में मैंने वही सबसे बड़ा सुख संतोष पाया था। मुझे अपनी किताबों की आमदनी से पत्र–पत्रिकाओं से फुटकर रचनाओं का आया हुआ पैसा जैसा गर्व भरा संतोष देता है वैसा और कोई धन नहीं"[1]

नागरजी ने कई नाटक लिखे और उनका रंगमंच के प्रति लगाव भी खूब था। यह बात उनके उपन्यासों और आत्मकथा में नजर आती है। संस्कृति के एक घटक के रूप में नागर अपने उपन्यासों में रंचमंच के नाटकों की प्रसंगानुकूल उपस्थिति दर्ज करने का प्रयास करते हैं। 'मानस का हंस' में वे यही काम तुलसी से रामलीला, ध्रुवलीला इत्यादि के माध्यम से करवाते हैं। उनके कई उपन्यासों में नाटकों के होने का जिक्र मिलता है। अपनी आत्मकथा में वे अपने पिता को लखनऊ के शौकिया रंगमंच के श्रेष्ठ अभिनेता होने के साथ स्वयं भी मित्रों के साथ नाटक खेलने की बात करते हैं। स्वयं नागरजी ने कई नाटकों का निर्देशन भी किया। वे रेडिओ के लिए भी नाटक लिखते थे। उन्होंने प्रेमचंद के गोदान का भी सफल मंचन किया था। बहुत संभव है कि रंगमंच की यही चाहत ही उन्हें फिल्मों के ओर ले गयी हो।

कथाकार अमृतलाल नागर की तरह ही हिंदी के रचनाकारों ने न केवल साहित्य बल्कि सिनेमा पर भी अपने योगदान से अमिट छाप छोड़ी है। नागर अपने से पूर्व के हिंदी के उन लेखकों जो साहित्य के साथ सिनेमा में काम कर रहे थे के बारे में लिखते है– "प्रेमचंद जी गये और निराश लौटे, उग्र जी भी जस तस निभाकर लौट आये थे। सुदर्शन जी अलबत्ता जमे हुए थे और उन दिनों बम्बई में ही थे। कविवर प्रदीप जी ने नई चमक–दमक पाई थी। पढ़े–लिखे सुसंस्कृत अभिनेताओं, टेक्निशियनों और लेखकों की बढती भीड़ के कारन पुराने लोगों में जलन और खुड्पेंच का माद्दा पैदा हो गया था।"[2] सिनेमा जगत की चर्चा में वे अच्छे और बुरे की चर्चा गाहे–बगाहे करते रहते हैं। इससे ज्ञात होता है की सिनेमा की स्थिति उन दिनों इतनी बेहतर नहीं थी। वे कहते हैं कि– "सौभाग्य से मुझे शुरू में भले और अच्छे लोगों के साथ काम करने का मौका मिल गया। आज के दो ख्यातनाम निर्माता निर्देशक महेश कौल और श्री किशोर साहू उस समय मेरे अन्तरंग साथी थे। दोनों ही कोरे फ़िल्मी जीव न थे दोनों ने ही देशी विदेशी साहित्य का अध्ययन किया था और लघु कथाएँ भी लिखते थे।"[3]

फिल्मोद्योग में प्रवेश के समय के सिनेमा के बारे में वे कहते हैं कि "सन् 40 में मेरे फिल्मक्षेत्र में प्रवेश करने का समय युगसंधि का था। पुरानी थियेट्रिकल कंपनियों के अभिनेता, बाजारू गानेवालियाँ और लेखक मुंशी उस समय बहुतायत में थे आम तौर पर शोहदापन अधिक था लेखक मुंशी सेठों के मुसाहब मात्र थे। कहानियों धूम–धड़ाके और मारपीट की ही अधिक बना करती थी। भोड़ेपन और भोगविलास की ही धूम थी कुछ स्टूडियो में सेठों ने विलासकक्ष बना रखे थे"[4]

फिल्मोद्योग के स्याहपन कहें अथवा पूंजीवाद की कुत्सितवृत्ति या संवेदनहीनता सिनेमा के इस दूसरे पक्ष पर भी उन्होंने अपनी 'कोल्हापुर की याद' नामक शीर्षक में बात की हैं वहां वे सुंदराबाई (कलाकार) की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि एक समय वे स्टार थी उनके रिकार्डों का संग्रह नागर के पिता के पास भी थे। वे बताते हैं की जिस फिल्म में वे थी उसमें वे नायक की माँ का अभिनय कर रही थी "चित्र के नायक महोदय संवादों में तो खूब मातृप्रेम का प्रदर्शन करते थे लेकिन शॉट के बाद वे उनकी उपेक्षा ही करते थे।"[5] ऐसी ही एक बात लालबाई की भी है वह कहती है कि निर्माता–निर्देशक फिल्म में दिखाते हैं की अमीर लोग गरीबों पर अत्याचार करते हैं, उन्हें सताते हैं जबकि वे असल जिंदगी में भी वही काम कर रहे होते हैं। फिल्म में हो रहे इस प्रकार के वर्गभेद पर नागर लिखते हैं – "मैंने गौर किया की हमारी फिल्म कंपनी का निचला वर्ग ऊपर वालों का दंभ भरा व्यवहार देखकर बिना मार्क्सवाद पढ़े ही वर्ग–भेद की सामाजिक चेतना का जानकर होता है।"[6]

बम्बई की फिल्म–जगत की संगत में उन्हें हर तरह के लोग मिले। बम्बई में वे तीन तरह की संगत का जिक्र करते हैं उसमें पहले प्रगतिशील आन्दोलन के सज्जाद ज़हीर, ख्वाजा अहमद

अब्बास, तथा जनयुद्ध पत्रिका के कम्युनिष्ट मित्र, दूसरी संगत मराठी और गुजराती साहित्यकारों की थी और तीसरे नंबर पर फिल्मवालों का जिसमें दुनियादार, चापलूस, झूठ, बेईमान, खुशामदी, खरे सोने के दिलवाले, ज्योतिषी, तांत्रिक, दलाल आदि थे। ये सब फिल्मोद्योग से जुड़े लोग थे। फिल्मोद्योग से जुड़े लोगों और उनकी फिल्मों के बारे में श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं– "बम्बई में संयोगवश द्वारकादास डागा और रामनाथ डागा से जान–पहचान हुई। वे करोडपति थे और उस समय किशोर साहू के साथ मिलकर एक फिल्म बना रहे थे। कुछ समय बाद उन्होंने नागर जी को फिल्मों में संवाद लेखक के रूप में काम करने के लिए रोक दिया। नागर जी की इच्छानुसार आरम्भ में उन्हें दो सौ रुपये मासिक दिया गया। उन्होंने 'बहुरानी' फिल्म के संवाद लिखे। 'संगम', 'कुंवारा बाप', 'किसी से न कहना', 'पराया धन', 'उलझन', 'राजा', 'वीर कुणाल', 'सावन', 'कल्पना' आदि लगभग अठारह फिल्मों में उन्होंने आगामी सात वर्षों में संवाद लेखन किया।"[7]

मुंबई में नागर के लिए नटराज उदयशंकर की फिल्म 'कल्पना' के लिए संवाद लिखने के लिए पन्त और मराठी रंगमंच के पार्श्वनाथ आल्टेकर का तार आया और वे मद्रास पहुंचे। इस फिल्म में संवाद अमृतलाल नागर का था और लिरिक्स सुमित्रानंदन पन्त के थे । संवाद कहानी पर आधारित होते है और कहानी के अनुकूल होने के कारण उसकी सीमाएं होती हैं। उसका संवाद के स्तर पर ही मूल्याङ्कन किया जा सकता है। फिल्म के संवादों को समझने के लिए उनका तुलनात्मक अध्ययन के लिए सिनेमा की समझ आवश्यक है। यहाँ यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि फिल्म के संवाद पर संवाद लेखक के अलावा निर्देशक की काट–छांट अधिक होती है, क्योंकि यह 'कला कला के लिए' के साथ–साथ व्यावसायिक कला (जोकि मनोरंजन के लिए है) अधिक है।

कल्पना के लेखन के समय ही उन्हें एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी को लेकर बनाई गयी तमिल फिल्म 'मीरा' की हिंदी डबिंग का काम भी मिला इस फिल्म के गीत नरेन्द्र जी ने लिखे थे। हिंदी डबिंग में इसका निर्देशन भी अमृतलाल नागर ने किया था। तमिल में इस फिल्म के डायरेक्टर एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी के पति सदाशिवम थे। इससे पहले नागर दो रूसी फिल्मों 'जोया' और 'नसीरुद्दीन बुखारा में' की डबिंग हिंदी में कर चुके थे। यह डबिंग का शुरुआती दौर था। इस सम्बन्ध में श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं– "डबिंग का काम पहले–पहल इतनी सफलता के साथ नागर जी ने ही किया। पहले उन्होंने दो रुसी फ़िल्में हिंदी में डब की; बाद में सुब्बुलक्ष्मी की फिल्म मीरा की तमिल से हिंदी में डबिंग की"।[8]

उन्होंने गुंजन' नाम से एक फिल्म की पटकथा और संवाद लिखे; जिसमें बलराज साहनी को बतौर अभिनेता के रूप में लिया था। 'गुंजन के बहाने अमृतलाल नागर की कुछ यादें' शीर्षक के एक लेख में बलराज साहनी लिखते हैं– "एक दिन मुझे अपने प्रिय मित्र और हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर का पत्र आया कि फिल्म निर्माता वीरेद्र देसाई उनकी लिखी कहानी पर फिल्म बनाने वाले हैं, जिसमें मुख्य पात्र के रोल के लिए मुझे लेने का फैसला किया गया है। पारिश्रमिक दस हजार रूपये दिया जायेगा अगर मुझे स्वीकार हो, तो जवाबी तार दें।"[9] इसी में वे आगे लिखते हैं कि "एक अच्छे साहित्यकार द्वारा लिखी होने के कारण उसमें विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म दाव–पेंच थे। मैंने उन्हें समझ तो जरूर लिया, पर अभिनय में उनकी किस प्रकार अभिव्यक्ति की जाय इस तकनीक से मैं कोरा था। नागर जी खुद अभिनेता नहीं थे, इसलिए वे मेरी इस कमजोरी को पहचान नहीं पाए..... शूटिंग के शुरू के दिनों में न सिर्फ मेरी असलियत का भेद खुल गया, बल्कि निर्माता की नजरों में नागरजी का भी महत्त्व जाता रहा।"[10]

नागरजी महेश कौल के साथ मिलकर तुलसी के जीवन पर भी एक फिल्म बनाना चाहते थे। इस क्रम में जब तुलसी के जीवन पर 5 जीवनियों का अध्ययन किया। उन जीवनियों में उन्होंने यथार्थ की अपेक्षा गल्प ही अधिक पाया। महेश कौल भी इस प्रकार अप्रमाणिक गल्प पर फिल्म नहीं बनाना चाहते थे। नागर ने तुलसी के ग्रंथों को पढ़ा, जिनमें उनके जीवनवृत्त की वास्तविक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता था और उन्ही सूत्रों को पकड़कर उन्होंने तुलसी का जीवन चरित्र 'मानस का हंस' के रूप में हिंदी साहित्य को दिया। नागर रचना के पात्रों को पहले जीते थे जिससे उनके पात्र कहानी या उपन्यासों में जी उठते थे। चाहे वे 'ग़दर के फूल' लिख रहे हो, 'मानस का हंस' अथवा 'खंजन नयन' या फिर 'ये कोठेवालियां', उन्होंने उनसे सम्बंधित स्थानों पर जाकर, यथासंभव वहां रहकर, आवश्यकतानुसार साक्षात्कार करके उनके जीवन की कहानी को अपनी रचना में उतारा है।

साहित्य की भांति सिनेमा भी समाज के यथार्थ को प्रतिबिंम्बित करने का कार्य करता है। साहित्य विकास के उत्तरोत्तर यथार्थ की ओर बढ़ता नज़र आता है पर सिनेमा में यथार्थ दर्शन के साथ–साथ मनोरंजन का इतना दबाब है की वह कई स्थानों पर सस्ते मनोरंजन के लिए कामोद्दीपन, गली–गलौच, और मार–काट के दृश्यों के कारण सेंसरग्रस्त हो जाता है। सिनेमा के इस गिरते हुए स्तर पर नागर लिखते हैं– "सिनेमा, रंगमंच ख़ासतौर पर मनोरंजन के लिए बने हैं। हमारे मनोरंजन करने वाले बेचारे भद्दे और विकृत तथा हीन–वृत्तियों को उत्तेजन देने वाले तरीकों को ही जानते हैं। अब उनसे यह तरीका छीन लिया जायेगा तो उपदेश का चार्ट बन जायेंगे, जिसकी आड़ में उनका भद्दा–भोंडापन तिलक छाप और गाँधी टोपी लगाकर किसी हद तक 'भला' करने का अभिनय करेगा। मगर इससे जनता, देश और फिल्म व्यवसाय का कोई लाभ नहीं हो सकता।"[11]

फिल्ममेकर भले ही यह सोच ले की जनता को कुछ भी परोसा जाय वह उसे पसंद कर लेगी। उसके लिए सिनेमा एक चमत्कार है। वह कला को नहीं जानती। परन्तु नागर का मानना है कि जनता मूर्ख नहीं है। उसे कला की समझ भी खूब है। इससे फर्क नहीं पड़ता की जनता पढ़ी लिखी है अथवा अनपढ़। वह कला को जानती है। "कोई कहे की जनता आर्ट नहीं समझती है तो मैं उसे भी न मानूंगा यदि कला में दम है तो वह पढ़े बेपढ़े दोनों को एक साथ एक सामान ही प्रभावित करेगी। अंतर केवल इतना ही होगा की समुन्नत व चेतन व्यक्ति के पास कला का मर्म बखानने के लिए उचित शब्द होंगे बेपढ़ा लिखा कुछ का कुछ कर बखानेगा मगर बखानेगा अवश्य"।[12] जनता तो अपनी बुद्धि विवेक से चित्रपट को जैसे भी बखाने पर वे तो यहाँ तक कह जाते हैं कि निर्माता–निर्देशक के पास ही इतनी समझ नहीं है की वे किसी नए दृश्य की सराहना कर सके। एक स्थान पर वे कहते हैं कि– "अपने सात वर्ष के फ़िल्मी अनुभव में मैंने यह भी पाया कि निर्माता–निर्देशक प्राय: उसी रस प्रसंग को सराह पाते थे जो वे किसी हालीवुड फिल्म में देख चुके होते थे। कहानी अथवा चरित्र–चित्रण को समझने की बुद्धि बहुतों में तनिक भी नहीं थी।"[13]

सिनेमा भी साहित्य ही तरह ही केवल मनोरंजनमात्र के लिए नहीं है। वह हमेशा से ही समाज की दशा–दिशा के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आया है। इस नाते उसके जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है। नागर के सिनेमा पर लिखे लेखों में यह चिंता कई स्थानों पर आई है, उनका मानना है की यह बड़ी जिम्मेदारी का काम है और इसे जिम्मेदार हाथों में ही होना चाहिए। "सिनेमा आज के युग का एक अतीव शक्तिशाली माध्यम है। मनोरंज जनजीवन के विकास के लिए भोजन और वस्त्रों की भांति ही अत्यावश्यक है। अक्ल के नाखून नोचने वालों के हाथ में इतनी बड़ी जिम्मेदारी को यों ही सौंपे रखना हर तरह से घटक है।

सदियों की गुलामी से मुक्त होने वाला राष्ट्र अंधी दौड़ हरगिज नहीं दौड़ सकता।"[14]

साहित्य लेखन पर नागरजी ने तब जो बात लिखी है वह कमोबेस आज भी जस की तस है। वे लिखते हैं– "यह सच है की साहित्य के लिए लिखकर इस देश में खासतौर पर हिंदी में गिरस्ती चलाने लायक अच्छी कमाई नहीं हो पाती परन्तु इसके साथ ही यह भी सच है की साहित्य लेखन कार्य भी एक कार्य है और वह साहित्यिक से अपने लिए समय और लगन की मांग करता है।"[15] फिल्म लेखन के कलात्मक परन्तु संतोष न देने वाले कार्य उनकी जीवनी आई मौज कबीर की दिया झोपड़ा फूक' में उनके मन का द्वंद्व स्पष्ट रूप दे दिखलाई पड़ता है। एक तरफ एक वृत्ति अर्थापूर्ति करती है लेकिन संतोष नहीं देती तो वहीँ दूसरी वृत्ति संतोष तो देती है पर उससे गृहस्थी चलाना मुश्किल होता है। दोनों ही वृत्तियों में प्राथमिकता तय कर पाना लेखक को उहापोह की स्थिति में रखता है। वे साहित्य लेखन को प्रथम वरीयता देते है परन्तु मन से समझौता कर के आर्थिक कमी के लिए दूसरे माध्यमों की शरण लेना भी उन्हें बुरा नहीं लगता, बशर्ते वे उसे अधिक समय न दें। "फिल्म लेखन में और सबकुछ भले ही मिलता था पर मन का वह संतोष नहीं मिलता था जो लिखकर मिलना चाहिए"।[16]

आत्मसंतुष्टि न मिलने के अलावा भी वे मुंबई छोड़ने के एक दूसरे प्रभाव का जिक्र भी वे अपनी आत्म–कथा में करते हैं। उन्होंने न केवल मुंबई शहर के सुख सुविधाओं के स्वर्गीय वैभव का जिक्र अपनी आत्मकथा में किया बल्कि उसके स्याह पक्ष का भी उन्होंने खूब वर्णन किया है। पूंजीवादी व्यवस्था से त्रस्त मुंबई व्यवसाय उद्योग का केंद्र होते हुए भी बहुजन हिताय न होने के कारण उन्हें व्यक्ति के विकास में बाधक और उद्देश्यहीन लगती है।

मुंबई छोड़ने और अभीष्ट सिद्धि के सम्बन्ध में शरद नगर लिखते हैं– "मुझे लगता है यह सच है की नागरजी जो अरमान लेकर फिल्म में गये थे उस अभीष्ट को पूरा करने में तो वे सफल हुए ही अलावा इसके मोहमयी मायानगरी मुंबई, उसके रुपहले परदे की दुनिया तथा उसके जन–जीवन को रजतपट के कैमरे की नज़र से कागज पर उकेरते उकेरते वे ऐसी दिव्या दृष्टि पा गये जो मनुष्य के अंतस्थल को तल–अतल की गहराइयों तक देख सके।"[17]

सन 1944 के उत्तरार्ध में बंग दुर्भिक्ष ने उनका ध्यान आकृष्ट किया यह द्वितीय विश्वयुद्ध का समय था। जिसमें लाखों लोगों ने भूख से तड़पकर अपनी जान–गंवाई थी। नागर ने देश की यह स्थिति देखी थी और इसकी विभीषिका पर अपना उपन्यास भूख (महाकाल) भी मुंबई में रहकर पूरा लिखा और उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ की बैठकों में उस उपन्यास के कुछ अंश सुनाये, वे सराहे भी गये तब उन्हें एहसास हुआ कि "नागर अब बालू पर लकीर खींचना छोडो और लखनऊ चलकर उपन्यास, कहानियों के काम में लग जाओ।"[18] बस यही से उनका मुंबई फिल्मोद्योग से मोहभंग हो गया, वे वापस लखनऊ आ गये और साहित्य को समर्पित हो गए।

## निष्कर्ष

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि अमृतलाल नागर ने सिनेमा को सात वर्षों का समय दिया और लेखन की विविधता की तरह ही उन्होंने सिनेमा में भी विविध कार्य जैसे डबिंग, पटकथा लेखन, संवाद लेखन, निर्देशन का कार्य किया। वे फिल्मोद्योग में उतने सफल नहीं हुए परन्तु उस उद्देश्य की पूर्ति में जरूर सफल हुए जिसके लिए वे फिल्मोद्योग में गये थे। फिल्मोद्योग की असफलता ने उन्हें वह सफलता दी जिससे वे 'मानस का हंस' और 'भूख' (महाकाल) जैसे उपन्यास लिख पाए। फिल्मोद्योग में बिताये समय ने उन्हें सिनेमा को देखने का नजरिया और उसके विभिन्न पहलुओं को देखने की समाजवादी दृष्टि दी। सिनेमा की कुत्सितवृत्ति और स्याहपक्ष पर भी उन्होंने कलम चलाई और उसे समाज के सामने ला खड़ा किया।

## सन्दर्भ


1. टुकड़े टुकड़े दास्तान, आईने के सामने पेज 13
2. टुकड़े टुकड़े दास्तान, सात वर्ष के फ़िल्मी अनुभव, अमृतलाल नागर, पृष्ठ सं.124
3. टुकड़े टुकड़े दास्तान, सात वर्ष के फ़िल्मी अनुभव, अमृतलाल नागर, पृष्ठ सं.124
4. टुकड़े टुकड़े दास्तान, सात वर्ष के फ़िल्मी अनुभव, अमृतलाल नागर, पृष्ठ सं.124
5. टुकड़े टुकड़े दास्तान, कोल्हापुर की यादें, अमृतलाल नागर, पृष्ठ सं.89
6. वही पृष्ठ 91
7. भारतीय साहित्य के निर्माताः अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल गर्दिश के दिन पृष्ठ सं १०
8. भारतीय साहित्य के निर्माताः अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल गर्दिश के दिन पृष्ठ सं १२
9. उजास की धरोहर, गुंजन के बहाने अमृतलाल नागर की कुछ यादें, बलराज साहनी, पृष्ठ सं 62
10. उजास की धरोहर, गुंजन के बहाने अमृतलाल नागर की कुछ यादें, बलराज साहनी, पृष्ठ सं 63
11. फिल्मक्षेत्रे रंगक्षेत्रे, भूमिका, शरद नागरपृष्ठ सं.37
12. वही पृष्ठ 130
13. टुकड़े टुकड़े दास्तान, अमृतलाल नागर, पृष्ठ सं.126
14. फिल्मक्षेत्रे रंगक्षेत्रे, भूमिका, शरद नागरपृष्ठ सं.38
15. वही 133
16. वही पृष्ठ 133
17. फिल्मक्षेत्रे रंगक्षेत्रे, भूमिका, शरद नागरपृष्ठ सं.11
18. जीवनी आँखों से झरते ज्योति फूल 113